नयी समीक्षा का सिद्धान्त

पाश्चात्य समीक्षाशास्त्र में जिस आलोचनात्मक प्रवृत्ति का नाम नयी समीक्षा पड़ा है, उसका प्रयोग अमरिका में सबसे पहले 'नैशविल' से प्रकाशित 'द फ्यूज़िटिव (1922-25) के लेखकों की रचनाओं में हुआ था और उसके नेता जॉन क्रोरैंसम को नयी समीक्षा के नेतृत्व का श्रेय मिला। नयी समीक्षा (न्यू क्रिटिसिज़्म) शब्द भी रैंसम की पुस्तक 'द न्यू क्रिटिसिज़्म' (1941) में आया है और आज भी यह शब्द आलोचनात्मक विचारशृंखला की महत्वपूर्ण कड़ी बन गया है।

नयी समीक्षा एतिहासिक आलोचना के प्रति प्रतिक्रिया के फलस्वरूप अस्तित्व में आई। इसमें इलिएट एवं रिचर्ड्स का योगदान प्रमुख रहा है क्योंकि उन्होंने एक ऐसी आधारभूमि विकसित की जिस पर नये समीक्षकों ने मूलपाठ के सूक्ष्म भाषिक अध्ययन की विधि का निर्माण किया है। इलियट और रिचर्ड्स की यह मान्यता की आलोचनात्मक अध्ययन का मूल बिन्दु स्वयं कृति होती है अन्य कोई वाह्य तथ्य या सामग्री नहीं— नयी समीक्षा का प्रस्थान बिन्दु है। नये समीक्षकों ने इलियट और रिचर्ड्स को प्रेरणा-स्रोत के रूप में ग्रहण कर आलोचना की पाठकीय समीक्षा पद्धति को उसके चरम पर पहुँचा दिया। बींसवीं शताब्दी के चौथे दशक में इस नई समीक्षा को इसके प्रमुख आलोचकों रैंसम, एलन टेट, ब्लैकमूर, रावर्ट पेन वारेन, क्लींथ ब्रुक्स तथा एम्पसन के कार्य विशेष महत्वपूर्ण माने जाते हैं।

नयी समीक्षा के समय प्रचलित आलोचनात्मक प्रणालियों में मानवतावादी और मार्क्सवादी विचारकों के विचारों में यद्यपि मतभेद था पर उनके दृष्टिकोण में समानता थी। मानवतावादी विचारकों ने साहित्य में रुचि ली तो उसके नैतिक, धार्मिक, सामाजिक उपयोग पक्ष की ओर आकृष्ट होने के कारण। उधर मार्क्सवादी विचारकों ने उसे प्रचार साधन अथवा समाजशास्त्रीय दृष्टि से मात्र देखने का प्रयास किया। परम्परागत शास्त्रीय आलोचना में कृति के बजाय कृतिकार पर अधिक जोर देकर इस स्थिति को और भी जटिल बनाया गया। ऐसे में, इस तरह के आलोचनात्मक आन्दोलन की आवश्यकता थी जो मार्क्सवाद, मानववाद और शास्त्रीय समीक्षा प्रणाली के बंधन को स्वन्त्रता दिला सके। क्लींथ ब्रुक्स ने 'द वेल रॉट अर्न' में इसी भावना के अनुरूप साहित्य के सामान्य सिद्धान्तों में ढूँढ़ने का प्रयत्न किया, जिसको उसने संक्षेप में इस प्रकार रखा है—

1. कविता अपनी रचना के युग की भावना (अथवा संवेदनशीलता) के आधार की अभिव्यक्ति करती है।

2. अतीत के आलोचक काव्य को आत्मनिष्ठता की कसौटी पर कसने के लिए उतने ही योग्य थे, जितने हम।

3. काव्य वही है, जिसे किसी भी समय, किसी भी स्थान पर प्रतिष्ठित निर्णायकों ने काव्य की संज्ञा दी हो।

4. किसी भी युग की कविता कभी गलत रास्ते पर नहीं जाती। हो सकता है कि संस्कृति गलत राह पर चल दे, सभ्यता का विपथन हो जाय, आलोचना दिशा भ्रष्ट हो जाय परन्तु

समाष्टगत अर्थ में कविता कभी गलत राह पर नहीं जा सकती।

5. अतः हर कविता को उसकी वैयक्तिक संवेदनशीलता के आलोक में परखा जाना चाहिए जो उसकी उत्कृष्टता एवं विकृष्टता की कसौटी भी होती है।

नयी समीक्षा के विचारकों का मानना था कि जब हम किसी कलाकृति की समीक्षा करके उस पर कोई निर्णय लेते हैं तो उस निर्णय में हमारी समूची ऐतिहासिकता की भावना और मानव की नियति समाहित रहती है। संवेदना पीढ़ी दर पीढ़ी बदलती रहती है किन्तु अभिव्यक्ति को कोई प्रभावशाली ही बदल सकता है। इनका मानना था कि किसी भी राष्ट्र में भाषिक क्रान्ति से अधिक महत्वपूर्ण और कुछ नहीं होता है। रैंसम ने कलाकृति में शब्द विधान और उसके अर्थ विधान की चर्चा करते हुए लिखा कि : अर्थविधान शास्त्र की भाषा की चीज है और शब्द विधान काव्य के भाषा की। एलेन टेट ने काव्य में वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ के बीच सामंजस्यपूर्ण प्रतिमानों की चर्चा की।

इलियट ने नयी समीक्षा की नीति रखते हुए 1921 में ही लिखा कि आलोचना की ईमानदारी इसी में है कि वह कवि की ओर नहीं, कविता की ओर उन्मुख हो, और तभी संवेदनापूर्ण रसास्वादन संभव है। नये समीक्षक भी कहते हैं कि कवि हमें कविता ही देता है, कुछ और नहीं और कविता से बाहर की किसी भी वस्तु पर विचार करना गलत है जो उस कविता को आलोकित करने में सहायक न हो अर्थात् इसका अर्थ यह है कि हम किसी कलाकृति की ओर सौन्दर्यानुभूति के नाते आकृष्ट होते हैं— जैसे हम नाटक देखने अथवा संगीत सुनने के लिए रंगशाला में जाते हैं, कलाकारों की जीवनी के लिए सामग्री एकत्र करने अथवा किसी समाज वैज्ञानिक रोग का निदान करने अथवा किसी सभ्यता के उत्थान पतन के इतिहास का अध्ययन करने नहीं जाते हालाँकि यह सच है कि ये सब प्रसंगतः उसमें से उभरकर सामने आती है। स्पीगार्न ने भी बाद में नयी समीक्षा (1970) में लीविस की बात का समर्थन किया कि समाजशास्त्री की भी किसी कलाकृति में से तभी कुछ अधिक मिल सकता है जब कि वह काव्य में से आँकड़े न छाँटे बल्कि उसे एक साहित्यिक आलोचक की नजर से देखे।

नयी समीक्षा के आलोचकों ने काव्य की अद्वितीयता को उभारने का अपना निजी तरीका निकाला है। रिचर्ड्स ने भावात्मक और निर्देशात्मक अर्थ का, एम्पसन ने अनेकार्थता का, रैंसम ने शब्दविधान और अर्थविधान का, क्लींथ ब्रुक्स ने विरोधाभास का, वारेन ने वक्रोक्ति का, इलिएट ने मूर्त विधान का और ब्लैकमर ने भंगिमा का। इस प्रकार प्रत्येक आलोचक का अपना एक मूलमंत्र है जिसके अनुसार वह समीक्षा कार्य को करता है।

रैंसम कविता के मूल्यांकन के स्वरूप को स्पष्ट करता हुआ कहता है कि, आलोचक को चाहिए कि वह कविता को किसी दुःसाध्य प्रमेयवादी या तत्त्वमीमांसीय कौशल से किसी प्रकार कम न समझें। आलोचक को एक ऐसे प्रमेयवाद का, एक ऐसी सत्ता का विश्लेषण करना पड़ता है जिसका विश्लेषण विज्ञान द्वारा सर्वथा असंभव है। कवि अपनी कविता में उस सत्ता को

... ... उसका प्रभाव के कारण निरंतर टूटता जा रहा होता है। वह हमारे सम्मुख वस्तुगत परिपूर्णता को प्रस्तुत करता है ताकि हमें वास्तविक मूल्यों का बोध हो सके। एकमात्र कला को ही ऐसी शक्ति से संकलित माना गया है जो हमारे समक्ष गुणात्मक घनत्व या मूल्यगत घनत्व प्रस्तुत करती है। वह आगे कहता है कि यह विश्व परस्पर विरोधी सम्बन्धों और अन्तर्व्याप्तियों से पूर्णतः आपूरित है। कविता काव्यभाषा की सघनता या व्यंजकता के द्वारा उसका चित्रण करती है। सघनता और वैशिष्ट्य का सम्बन्ध कविता के शब्द विधान से है। अतः नयी समीक्षा काव्यभाष: और प्रतीकवाद का व्यापक अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास करती है। नयी समीक्षा की मूल समस्या यह देखना है कि किसी साहित्यिक रचना में भाषा किस प्रकार क्रियाशील होती है।

उपर्युक्त विश्लेषण के साथ नयी समीक्षा की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार रखी जा सकती है—

1. नये समीक्षकों के लिए कृति या रचना सबसे महत्त्वपूर्ण है। उनके अनुसार रचनाकार का जीवन और परिवेश, रचना के प्रेरणास्रोत, रचना-प्रक्रिया, रचनाकार की मानसिकता, उसका ऐतिहासिक पक्ष, उसमें निहित दर्शन, समाज, संस्कृति, नीति तथा उपयोगिता आदि सभी बातें 'नयी समीक्षा' के विचार क्षेत्र के बाहर की वस्तुएँ हैं। उसका रचना की समीक्षा या मूल्यांकन से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। अतः नयी समीक्षा के समीक्षकों के लिए विचारणीय तथ्य केवल कृति है।

2. किसी भी कृति के साक्षात्कार के समय सबसे पहले उसका भाषायी स्वरूप सामने आता है। इसीलिए नयी समीक्षा भाषा को केन्द्र में रखकर कृति को देखने का प्रयास करती है। उनकी दृष्टि में कविता वस्तुतः भाषा की संरचना होती है जिसका अभिप्राय प्रकारान्तर से वस्तु की अन्विति से होता है। अतः कृति के विश्लेषण के लिए कृति की भाषा का विश्लेषण आवश्यक है। अतः नये समीक्षकों के अधिकांश समीक्षामान भाषा पर ही केन्द्रित है— यथा—टेक्श्चर, स्ट्रक्चर, अनेकार्थता, पैराडाक्स आदि।

3. नयी समीक्षा कलाकृति को अखण्डता में देखने पर बल देती है अर्थात् उसके विचार से कविता के रूप में तत्त्व और वस्तु तत्त्व को अलग-अलग करके समीक्षकों को नहीं देखना चाहिए अपितु उसका विश्लेषण एक समन्वित इकाई के रूप में होना चाहिए।

4. नयी समीक्षा ने सिखाया कि कविता कैसे पढ़ी जानी चाहिए, यह अनुभव कराया कि साहित्य का अपना एक औचित्य है जो भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त होता है और कविता को कविता के रूप में पढ़ा जाना चाहिए किसी और रूप में नहीं।

5. शुद्ध साहित्य के अतिरिक्त दूसरे विषयों के ज्ञान की आवश्यकता को सिद्ध करके आलोचना के आयामों को विस्तार दिया है।

6. छंद, कल्पना और अलंकार ग्रहणशीलता या संवेदना के घनत्व की अभिवृद्धि करते हैं। पहले दो तत्त्व इस उद्देश्य की प्राप्ति काव्यवस्तु को एक प्रकार का संयम देकर करते हैं औ

अंतिम (अलंकार) ज्ञानात्मक अवधान को आकृष्ट करके और संवेदनाओं पर वितान के प्रभाव को क्षीण बनाकर करते हैं।

7. प्रतीक, बिम्ब ये काव्य की निर्मिति में जितने सहायक हैं, उतने उसके विश्लेषण में भी।

इस प्रकार नयी समीक्षा रचना या कविता को शुद्ध रूप में देखने की पक्षपाती है। यह इसके स्वतन्त्र अस्तित्व की स्थापना करती है तथा निरपेक्ष एवं रचनापरक अध्ययन पर बल देती है। इस समीक्षा प्रणाली में काव्यभाषा को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। भाषागत तथा कृति की गहराई से शब्द, गति, लय और उसकी भंगिमा एवं उनकी स्थिति के सौन्दर्य का अनुशीलन ही उसका लक्ष्य है। वास्तविक रचना-सौष्ठव इसी पद्धति द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। इस दृष्टि से इसका योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वस्तुतः नयी समीक्षा एक दृष्टिकोण ही है, कोई नवीन-पद्धति या सिद्धान्त नहीं।

पाश्चात्य समीक्षक प्रीचर्ड ने 'क्रिटिसिज्म इन अमेरिका' में नयी समीक्षा के योगदान को इस प्रकार रखा है— नयी समीक्षकों के अधिकांश योगदान का निश्चयात्मक मूल्यांकन तो कुछ समय बाद ही हो सकेगा परंतु यह स्पष्ट है कि भाषिक अभिव्यंजना पर जोर देने से कविता के अध्ययन को लाभ पहुँचा है। काव्याध्ययन को नयी दिशा देकर और काव्य-समस्याओं के प्रचार द्वारा उन्होंने काव्य पाठकों की संख्या में अभिवृद्धि की है। उन्होंने जो अंधाधुंध स्थापनाएँ की है उनके कारण विरोधियों में लोहा लेने की प्रवृत्ति जगी और इस तरह साहित्य के अध्ययन में उन्होंने नये प्राण फूंक दिये। विगत वर्षों में नये समीक्षकों के आत्मपर्यालोचन से और इस प्रकार के संकेतों से कि वे अपने अध्ययन को व्यापक बनाने के लिए अधिकाधिक तैयार हैं, आशा बाँधती है। इस प्रकार का अर्थ उनका और विकास है या एक विचारधारा के रूप में उनका तिरोभाव— यह बात अभी कोई नहीं कह सकता, किन्तु यह सत्य यह है कि आलोचना की ऐसी महत्त्वपूर्ण विचारधारा इस शती में अभी कोई और नहीं जन्मी है।

क्रोचे का अभिव्यंजनावाद

क्रोचे ने अपने 'एस्थेटिक' नामक ग्रन्थ में दार्शनिक हेगल से प्रभावित होकर अभिव्यंजनवाद सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। वे काव्य में अभिव्यंजना को ही सर्वस्व स्वीकार करते हैं। उनकी दृष्टि में अभिव्यंजना सौन्दर्य है, और सौन्दर्य ही अभिव्यंजना है। सौन्दर्य के सन्दर्भ में क्रोचे की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थापना यह है कि सभी मनुष्य कवि हैं, कुछ बड़े और कुछ छोटे। जिनकी सहजानुभूति या अभिव्यंजना पूर्ण है, वे बड़े कवि हैं और जिनकी अपूर्ण है, वे छोटे कवि। उसके अनुसार अभिव्यंजना, कला या काव्य एक सौन्दर्य सृष्टि है। इसकी सृजन-प्रक्रिया की चार अवस्थाएँ हैं—

प्रथम— कल्पना पर पड़े प्रभाव की
द्वितीय— मानसिक सौन्दर्य-संश्लेषण की
तृतीय— सौन्दर्यानुभूति के आनन्द की
चतुर्थ— उसकी शारीरिक क्रिया के रूप में रूपान्तरण की।

ये चारों अवस्थाएँ जिनकी सहजानुभूति या अभिव्यंजना के साथ निर्वाध रूप से पूर्ण या सफल होती है, वही बड़ा कवि या कलाकार होता है, जबकि अन्य कवियों में ये चारों अवस्थाएँ पूर्णता को प्राप्त नहीं होतीं।

क्रोचे ने हेगल की विचार प्रक्रिया का समर्थन किया है लेकिन वह इस बात से सहमत नहीं है कि कला का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। उसके अनुसार वह दर्शन का अनुवर्ती न होकर पूर्णतः स्वतन्त्र है क्योंकि कलाकार के हाथ में लेखनी, कूची या छेनी आने के पहले ही उसके मन में कला का समावेश हो जाता है तथा वह अपने समस्त भावावेशों एवं संवेदनाओं को दूर हटाकर किसी कलाकृति का सृजन करने में प्रवृत्त होता है। अतः उसने अभिव्यंजनावाद के समर्थन में ही सहजज्ञान अथवा अन्तर्मन की अभिव्यंजना को कला स्वीकार किया है।

क्रोचे ने कला का सम्बन्ध स्वयंप्रकाश ज्ञान से माना है, जिसे सहजानुभूति कहा है। उसके अनुसार सहजानुभूति प्रत्यक्ष बोध है अर्थात् वस्तु का यथार्थ या वास्तविक ज्ञान। क्रोचे के सौन्दर्य-शास्त्र में कला सहजानुभूति का पर्याय है। क्रोचे की भाषा में कहें तो कला सहजानुभूति की अभिव्यंजना है। उनके इस सौन्दर्यशास्त्रीय प्रणाली में कला, सहजानुभूति और अभिव्यंजना तीनों पर्याय हैं।

कलाकार तथा सामान्य व्यक्ति को सहजानुभूति में अंतर स्पष्ट करते हुए क्रोचे कहते हैं कि कलाकार इसलिए कलाकार है कि वह उन चीजों को देखता है जिन्हें दूसरे लोग केवल महसूस करते हैं या उसकी थोड़ी सी झलक पा जाते हैं) लेकिन उन्हें देखते नहीं। हममें से प्रत्येक के अंदर कवि, मूर्तिकार, संगीतज्ञ, चित्रकार अथवा गद्य लेखक का थोड़ा-सा अंश विद्यमान है। लेकिन इन कलाकारों की तुलना में वह न्यून होता है क्योंकि इन कलाकारों में मानव-प्रकृति की अत्यन्त सार्वभौतिक प्रवृत्तियाँ या शक्तियाँ उत्कृष्ट मात्रा में विद्यमान रहती हैं फिर भी यह न्यून रूप हमारी सहजानुभूतियों का वास्तविक स्रोत है, अन्य सब तो आवेग मात्र है जिन्हें मनुष्य आत्मसात् नहीं कर सकता। अतः सहजानुभूतिजन्य ज्ञान अभिव्यंजनात्मक ज्ञान है। सहजानुभूति का होना अभिव्यंजित होना है— सिर्फ अभिव्यंजित होना, न इससे कुछ अधिक और न कम। (एस्थेटिक, पृ०, 11)

क्रोचे के अनुसार प्रतिभा ज्ञान और अभिव्यंजना दोनों एक ही क्षण में एक साथ उत्पन्न होते हैं, दोनों एक हैं— दो नहीं। उनकी दृष्टि में प्रातिम ज्ञान ही कला है और कला प्रातिम ज्ञान अर्थात् कला प्रातिम ज्ञान है और प्रतिभा ज्ञान अभिव्यंजना है। अतः कला अभिव्यंजना है और अभिव्यंजना कला है। उसके अनुसार वे लोग सही नहीं हैं जो काव्य को अभिव्यंजना मानते हैं और अभिव्यंजना को काव्य नहीं मानते।

अभिव्यंजना को स्पष्ट करता हुआ क्रोचे कहता है कि अभिव्यंजनात्मक क्रिया मन की बहक नहीं वरन् एक आत्मिक आवश्यकता है। इसलिए वह किसी कलावस्तु को एक ढंग से प्रस्तुत कर सकती है और वही सही ढंग होता है अर्थात् कवि अपनी आंतरिक प्रेरणा से ही अभिव्यंजना करता है। प्रेरणा अभिव्यंजना मुक्त होती है। अतः आंतरिक प्रेरणा अभिव्यंजना की प्रमुख विशेषता है। यह प्रेरणा कल्पना की समानार्थी है।

मन की सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दो क्रिया होने के कारण वह अभिव्यंजना के दो भेद आंतरिक अभिव्यंजना और वाह्य अभिव्यंजना स्वीकार करता है। इस क्रम में वह आंतरिक अभिव्यंजना को काव्य मानता है, जबकि बाह्य अभिव्यंजना को काव्य स्वीकार नहीं करता क्योंकि काव्य अन्तर्मन की रचना है।

अभिव्यंजना को क्रोचे मुक्त प्रेरणा मानता है अर्थात् वह कवि की इच्छा पर निर्भर नहीं है। कवि को इस बात का ज्ञान तो रहता है कि उसके मन में अभिव्यंजना उत्पन्न हो रही है लेकिन वह विवश होता है न तो वह उसे रोक सकता है और न उसके लिए शीघ्रता कर सकता है क्योंकि उसकी दृष्टि में यह आत्मा की प्रातिभक्रिया है उसमें किसी भी प्रकार के चयन का विकल्प नहीं है। इसलिए वह प्रत्येक अभिव्यंजना को काव्य या कला स्वीकार करता है। अतः क्रोचे की दृष्टि में प्रत्येक वस्तु काव्य का विषय बन सकता है और प्रत्येक वस्तु की अभिव्यंजना काव्य है। यह दृष्टि वस्तुतः क्रोचे के अभिव्यंजनावाद सिद्धान्त का प्रमुख आधार है।

वस्तु एवं रूप के सम्बन्ध में वह कहता है जिनका यह मत कि काव्य केवल वस्तु है और जो काव्य को वस्तु एवं रूप का योग मानते हैं, हमारे विचार से वे सभी गलत हैं। काव्य में अभिव्यंजना वस्तु के साथ जोड़ी नहीं जाती वरन् मन द्वारा सहजानुभूति को अभिव्यंजना में बदल दिया जाता है। अभिव्यंजना में अनुभूतियाँ इस प्रकार पुनः व्यक्त होती है जिस प्रकार फिल्टर से छनकर पानी वही होता हुआ भी, अपने पूर्वरूप से भिन्न रूप में प्रकट होता है। (ऐस्थेटिक, पृ0 37) अर्थात् जिस प्रकार फिल्टर से छान लेने पर पानी तो वही रहता है जो वह पहले था, फिर भी उसमें कुछ परिवर्तन हो जाता है और इसी प्रकार कवि का मन सहजानुभूतियों को कल्पना के सहारे जब ढालता है तो वह पूर्ववत् होती हुई भी सर्वथा नवीन हो जाती है।

क्रोचे ने अभिव्यंजना को फिल्टर की उपमा प्रदान करके अपने अभिव्यंजना सिद्धान्त को अधिक स्पष्ट करने का प्रयास किया है। अभिव्यंजना के कारण सहजानुभूति का स्वरूप यथावत् नहीं रह जाता वरन् उसमें कुछ परिवर्तन हो जाता है। सहजानुभूति का यह परिवर्तित रूप ही प्रमुख स्थिति है और यही परिवर्तित सहजानुभूति ही अभिव्यंजना है।

अतः जब भी क्रोचे ने काव्य को सहजानुभूति न कहकर अभिव्यंजना कहा तो उसका तात्पर्य यह है कि काव्य सहजानुभूति नहीं वरन् अभिव्यंजना युक्त सहजानुभूति है। वह अभिव्यंजना को लौकिक नहीं मानता लेकिन उसे अखण्ड और अविभाज्य स्वीकार करता है।

उसे किसी भी रूप में वर्गीकृत नहीं किया जा सकता क्योंकि उसकी दृष्टि में वर्गीकरण कृति या अभिव्यंजना को मृतप्राय बना देती है। उसका नैतिकता से भी कोई सम्बन्ध नहीं है क्योंकि उसकी दृष्टि में यदि कलाकार धूर्त, ठग और पाखंडी है तो वह इन्हें कला द्वारा प्रदर्शित कर अपनी शुद्धि कर लेता है। यदि कला की सच्चाई का अर्थ है, अभिव्यक्ति की पूर्णता तो स्पष्ट है कि नैतिकता से उसका कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता।

वस्तुतः अभिव्यंजना का सम्बन्ध मन की क्रिया से है-- जो व्यक्ति की आध्यात्मिक आवश्यकता है। इसीलिए क्रोचे ने इसे सहजानुभूति या सहजज्ञान के रूप में स्वीकार किया है। क्रोचे ने कला को मानव की एक सहज मानसिक क्रिया के रूप में मान्यता देकर उसकी अखण्डता और शाश्वत सत्ता को प्रमाणित किया है परन्तु पूर्ण काव्य जो शाश्वत् अखण्ड वस्तु है, दुर्लभ है। इस प्रकार क्रोचे अभिव्यंजना सिद्धान्त द्वारा काव्य और कला को देखने-समझने की एक दृष्टि प्रदान करता है।

निष्कर्ष रूप से कह सकते हैं कि क्रोचे ने अभिव्यंजनावाद के द्वारा कलावाद को परिमार्जित किया है। उसने सौन्दर्यशास्त्र का पृथक् अस्तित्व निर्धारित कर कलावादी सिद्धान्त की शुद्धता को भी प्रमाणित किया है। सहजानुभूति को अभिव्यंजना प्रतिपादित कर उसने उसे सौन्दर्यात्मक अथवा कलात्मक तथ्य से अभिन्न बताया है। इसलिए उसने प्रतिभा को अलौकिक शक्ति मानने से इंकार कर दिया और केवल सफल अभिव्यक्ति को अभिव्यंजना माना है। उसका यह मत कलावादियों के लिए एक विशेष आधार है कि कला अभिव्यंजना है और सभी अभिव्यंजनाएँ कला है। यह वैयक्तिक होती है और उसकी पुनरावृत्ति नहीं होती लेकिन कल्पना की सार्वभौमिकता के कारण समान विम्ब विभिन्न व्यक्तियों के मन में उसी सहजानुभूति को उत्पन्न करती हैं।